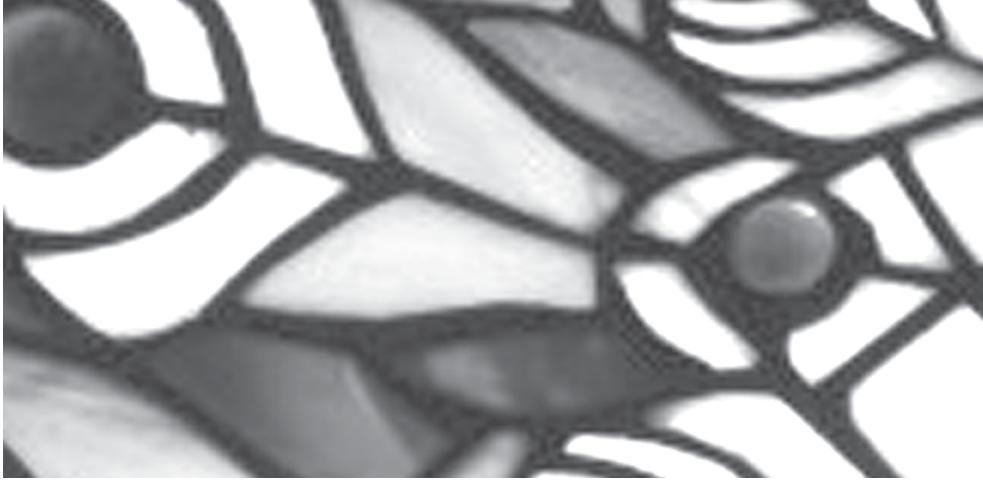

बाधा का सिद्धान्त

लास्या संहिता

बाधा का सिद्धान्त यानी हैंडीकैप प्रिंसिपल, इज़राइली वैज्ञानिक दम्पति ऐमोट्ज़ और ऐविशाग ज़हावी द्वारा 1970 के दशक में प्रस्तावित एक विचार है। यह व्यवहार के जीवविज्ञान के क्षेत्र में 20वीं सदी के सबसे मौलिक विचारों में से एक है, और साथ ही यह प्रकृतिवादियों को डार्विन के समय से असमंजस में डालने वाली कई बेहद पुरानी पहेलियों को समझाने का प्रयास करता है। यद्यपि शुरुआत में इस सिद्धान्त को वैज्ञानिक समुदाय के सवालों और संशयों का सामना करना पड़ा, पर समय के साथ और परिष्कृत गणितीय प्रतिरूपण (mathematical modelling) के बाद अब इसे व्यापक स्वीकृति हासिल हो गई है। अपने सिद्धान्त को स्पष्ट करते हुए लिखी गई किताब में लेखकद्वय जंगलों में विभिन्न प्राणियों के आचरणों के अवलोकन की चर्चा करते हैं और सुझाते हैं कि किस तरह इन्हें *बाधा के सिद्धान्त* का उपयोग करके समझाया जा सकता है। प्रयोग और प्राणियों के आचरणों के लम्बे समय तक किए गए अवलोकन, दोनों ही अधिकांश रूप से लेखकों की परिकल्पनाओं के माफिक बैठते हैं। इस लेख में मैं *बाधा के सिद्धान्त* की,

और विभिन्न जैविक घटनाओं में इसके उपयोग की चर्चा करूँगी।

मोर की पूँछ भारी-भरकम क्यों?

चार्ल्स डार्विन ने अपनी किताब, *ऑन द ओरिजिन ऑफ स्पीशीज़*, जिसने पुराने ढर्रे को तोड़ एक नया रास्ता सुझाया, में यह समझाने के लिए कि पृथ्वी पर विविध प्रकार के जीवों की उत्पत्ति किस तरह हुई, 'प्राकृतिक चयन' के नाम से जानी जाने वाली एक प्रक्रिया प्रस्तावित की। बेहद सतर्क और प्रकृति से शंकालु (इसी के चलते किताब को अन्तिम रूप देने में उन्हें कई साल लग गए थे) होने की वजह से डार्विन ने उक्त प्रक्रिया के साथ ही स्वयं के द्वारा देखे गए ऐसे कई प्राकृतिक तथ्यों को भी जनता के समक्ष रखा जिनके बारे में उसे लगा कि प्राकृतिक चयन के सिद्धान्त के द्वारा इन बातों का पर्याप्त स्पष्टीकरण नहीं दिया जा सकता। ऐसी पहेलियों में से एक प्रमुख थी - मोर की पूँछ। मोर की पूँछ इतनी भारी-भरकम दिखने वाली और विशाल क्यों होती है? हम में से अधिकांश को यह सवाल सुनने में एकदम मूर्खतापूर्ण भी लग सकता है। 'क्योंकि वह आकर्षक होती है,' इसका ज़ाहिर उत्तर लगेगा, क्योंकि हमने हमेशा से मोर के बरखा नृत्यों और मिलन की ऋतु के दौरान मोरनी के समक्ष अपने खूबसूरत पंखों को प्रदर्शित करने के यदा-कदा सौभाग्य से दिखने वाले दृश्यों के किस्से सुने हैं। लेकिन जैसा हम समझते हैं, सिर्फ खूबसूरत होना ही सब कुछ नहीं है। किसी भी फीनोटाइप[1] (शारीरिक संरचना) के चयनित होने के लिए ज़रूरी है कि या तो वो जीव के 'अनुकूल' हो या फिर उस गुण या लक्षण में अगली पीढ़ी तक पहुँचने की पर्याप्त अनुवांशिक प्रकृति हो। पर मोर की भारी पूँछ तो उसके चलने-फिरने में रुकावट डालती-सी प्रतीत होती है और निश्चित ही इससे उसे शिकारी प्राणियों के सामने और उड़ते वक्त दिक्कत होती होगी। तो फिर आखिर क्यों विकास के इतने बड़े अन्तराल में ऐसी लम्बी पूँछ को 'चुना गया'?

व्यवहार का अध्ययन करने वाले जीवशास्त्रियों ने इस सवाल का जवाब खोजने की लगातार कोशिशें की हैं और उन सब में फिशर का 'बेकाबू' (रनवे) लैंगिक चयन का विचार सम्भवतः सबसे नवाचारी है। फिशर का अनुमान था कि इस बात की काफी सम्भावना है कि कुछ खास प्रजातियों के नरों में इन विलक्षण और भड़कीली द्वितीयक लैंगिक विशेषताओं की शुरुआत, इसके पहली बार उभरने पर मादा द्वारा दी गई हल्की-सी तरजीह

[1] *किसी भी जीव की कोई बाहरी विशेषता या लक्षणः जैसे उसकी आकारिकी, विकास, जैव-रसायनिक या शारीरिक विशेषताएँ, आचरण, और आचरण के परिणाम (जैसे कि चिड़िया का एक विशेष घोंसला)।*

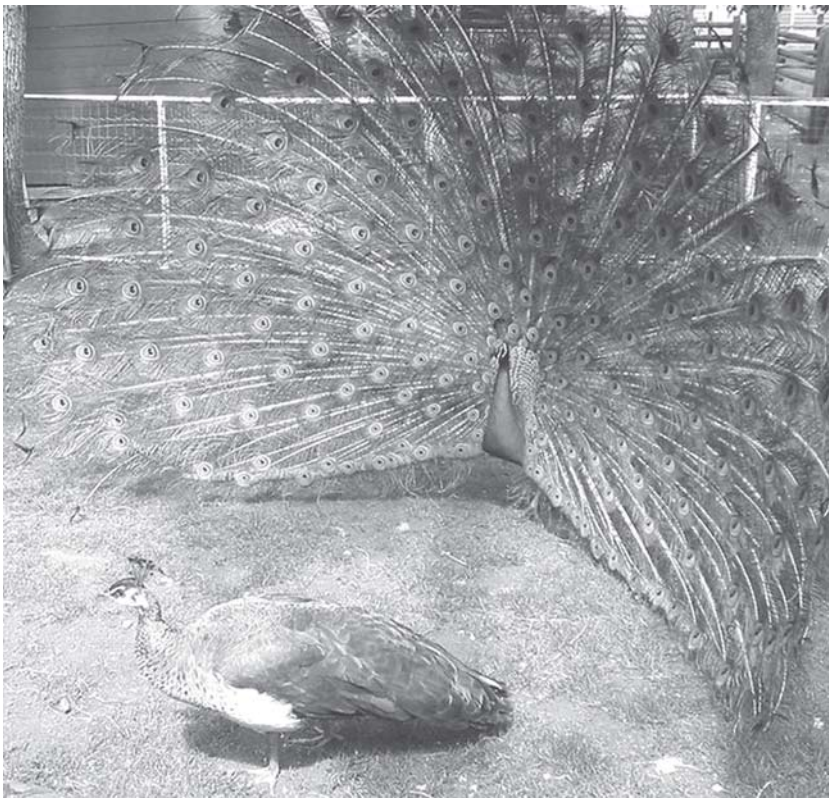

बाधा के सिद्धान्त के अनुसार नर मोर की भारी-भरकम पूँछ उसकी शारीरिक फिटनेस को दर्शाती है। यानी नर मोर मादा को यह संकेत देने की कोशिश करता है कि मैं इतनी भारी पूँछ के बावजूद अपने रोज़मर्रा के कामकाज सहज रूप से कर लेता हूँ।

की वजह से हो सकती है। सम्भवतः प्रारम्भ में, थोड़ी अतिरंजित विशेषता को ज़्यादा ताकतवर और जैविक रूप से ज़्यादा तन्दुरुस्त नरों के साथ जोड़कर देखा गया हो। हालाँकि, जैसे-जैसे इन थोड़े ज़्यादा अलंकृत नरों को चयन में तरजीह मिलती रही, वैसे-वैसे उनकी वह खूबी भी ज़रूरत से ज़्यादा बढ़ गई और बेहद तड़कीले-भड़कीले ढंग से अलंकृत नर उभरकर सामने आए, ऐसे जीव जो उतने माफिक नहीं रह गए क्योंकि एक प्रकार से, वह खूबी उन जीवों की क्षमता से बड़ी हो चुकी थी और इसलिए बेतुकी और भारी-भरकम हो गई थी। दूसरे शब्दों में, फिशर का मानना था कि वाकई एक समय मोर की पूँछ का सबसे ताकतवर नरों के साथ सम्बन्ध होता होगा पर

अब ऐसा नहीं है, बल्कि अब तो वह एक बोझ-सी हो गई है।

नया विचार

लैंगिक चयन के विषय को फिशर के बाद भी लोगों का थोड़ा-बहुत ध्यान तो मिलता रहा, पर इस पहेली को समझ सकने में मदद देने वाली कोई नई महत्वपूर्ण खोज नहीं हुई, जिसकी काफी बड़ी वजह यह थी कि प्रायोगिक साक्ष्य अगर बिलकुल नदारद नहीं तो बहुत कम ज़रूर थे। 1970 के दशक के मध्य में जाकर यह सम्भव हो सका, जब वैज्ञानिक दम्पति ऐमोट्ज़ और ऐविशाग ज़हावी ने *द हैंडीकैप प्रिंसिपल*[2] नामक किताब प्रकाशित की। इस किताब में, उन्होंने मोर की इस प्रसिद्ध पूँछ के अलावा प्राणियों के ऐसे कई चकरा देने वाले आचरणों को समझाने के लिए एक नया सिद्धान्त प्रस्तावित किया। यह सिद्धान्त तीन प्रमुख विश्वासों पर निर्भर करता है-

- जानवर एक-दूसरे से संकेतों के माध्यम से संवाद करते हैं;
- इन संकेतों के प्रभावशाली होने के लिए इनमें ईमानदारी होना ज़रूरी है, और
- ईमानदार संकेत महँगे होते हैं, अर्थात्, ईमानदार संकेत देने वाले पशु को उसकी कुछ कीमत चुकाना पड़ती है।

मोर अपनी पूँछ को अपनी योग्यता (fitness) की घोषणा के रूप में इस्तेमाल करता है। ज़हावी दम्पति का कहना था कि उसकी विशाल पूँछ यह कहने का माध्यम है कि "इतनी असुविधा उत्पन्न करने वाली यह भारी-भरकम पूँछ रखने के बावजूद मैं रोज़ाना की अपनी उन तमाम गतिविधियों को भलीभाँति करने में सक्षम हूँ जो कि कोई कमतर वज़नी पूँछ वाला मोर करता है।"

ज़हावी दम्पति का तर्क था कि संकेत में अगर ईमानदारी है, अर्थात्, जब वह संकेत देने वाले की उपयुक्तता (fitness) का सही-सही अन्दाज़ा देता है, तभी वह प्रभावशाली होगा। परन्तु, एक ईमानदार संकेत निश्चित ही महँगा पड़ता है। क्यों? क्योंकि संकेत मुफ्त में नहीं आते। उनके लिए शरीर को कुछ कीमत (उदाहरण के लिए ऊर्जा) चुकानी पड़ती है। आप जितने मज़बूत होंगे, उतनी ही आसानी से आप इस कीमत को वहन कर सकेंगे। किसी कमज़ोर जीव की तुलना में एक ताकतवर जीव ज़्यादा बड़ी कीमत चुकाने में समर्थ होता है। इसलिए कुल मिलाकर इसका आशय यह हुआ कि यदि आपको देखकर ऐसा आभास होता है कि आप कोई बाधा ढो रहे हैं, और उसकी प्रकृति ऐसी हो कि कोई कमज़ोर जीव उसको सहन नहीं कर

[2] *ऐमोट्ज़ एंड ऐविशाग ज़हावी, द हैंडीकैप प्रिंसिपलः अ मिसिंग पीस ऑफ डार्विन्स पज़ल, ऑक्सफर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, 1997*

सकता हो, तो आप यह सन्देश दे रहे हैं कि आप ज़्यादा मज़बूत हैं। यह मानते हुए कि आप बेवकूफ नहीं हैं (और बेवकूफ लोग ज़्यादा समय तक बचे नहीं रह सकते), अगर आप शोएब अख्तर के सामने बगैर हैल्मेट के बल्लेबाज़ी करने जाते हैं, तो आप यह साफ संकेत दे रहे होते हैं कि आप शॉर्ट पिच गेंदबाज़ी से निपटने में सक्षम हैं। यही *बाधा के सिद्धान्त* का सार है।

जब ज़हावी दम्पति ने पहले पहल *बाधा के सिद्धान्त* को प्राणियों के व्यवहारों को समझाने के लिए इस्तेमाल किया तब यह एक चौंका देने वाला सिद्धान्त था। पर कुछ मायनों में यह एक पुराना विचार है। किसी रुकावट के बावजूद सफलता अर्जित करने वाले कार्य या व्यक्ति के लिए हमारे भीतर से सहज सराहना निकलती है। जहाँ एक अच्छे वायलिन वादक को तालियों की गड़गड़ाहट मिलती है, वहीं एक अच्छे मगर नेत्रहीन वायलिन वादक का जनता खड़े होकर अभिनन्दन करती है। अपनी किताब, *द थ्योरी ऑफ द लैज़र क्लासेज़* में 19वीं सदी के अर्थशास्त्री थॉर्स्टीन वैब्लेन ने धनी लोगों द्वारा संसाधनों के अपव्यय को समझाने का प्रयास किया। उन्होंने इसे 'प्रदर्शन हेतु भोग' (*कॉन्सपिक्युअस कंज़म्पशन*) कहा। वैब्लेन की व्याख्या एक तरह से *बाधा के सिद्धान्त* का पूर्व रूप थी। उसका कहना था कि धनी लोग अपने धनी होने का प्रचार करने के लिए अपव्यय करते हैं।

वापस मोर पर आते हैं, क्या मोरनियाँ वाकई 'ज़्यादा' सुन्दर पूँछ वाले नरों को पसन्द करती हैं? इसका उत्तर मैरिअन पैट्री और उनकी साथियों द्वारा इंग्लैण्ड के व्हिपस्नेड पार्क में की गई प्रयोगों की एक पूरी ृंखला द्वारा मिला, और इसका संक्षिप्त उत्तर है; हाँ, वे ऐसा करती हैं। मैरिअन पैट्री और उनके सहयोगियों ने यह परिभाषित करने के लिए कि 'सुन्दरता' में क्या-क्या शामिल हो सकता है, कई मानदण्डों का उपयोग किया, उदाहरण के लिए उन्होंने पूँछ के वज़न (जो निश्चित ही एक बाधा है), पंखों की संख्या और पूँछ की लम्बाई को कुछ मानदण्डों के रूप में इस्तेमाल किया। दिलचस्प बात यह है कि उन्होंने पाया कि मोर की पूँछ पर पाए जाने वाले आँख रूपी चिन्हों की संख्या, मादा द्वारा अपने साथी चुनने के निर्णय के लिए इस्तेमाल किया जाना वाला एक मानदण्ड होता है! हमें अभी तक यह तो नहीं मालूम है कि क्या मादाओं के पास वास्तव में इन चकत्तों को गिनने का कोई तरीका है या कि बस यूँ ही उन्हें ज़्यादा चकत्ते दिखने पर मोर ज़्यादा आकर्षक लगते हैं।

ज़रूरी है संकेत सच्चा होना

बाधा के सिद्धान्त का उपयोग प्राणियों में मेटिंग के लिए वरीयताओं को समझने में किया जा सकता है। खास बात यह है कि कोई भी मादा

सचमुच में किसी भी अक्षम नर को अपने बच्चों का पिता बनाने के लिए नहीं चुनेगी। वांछनीय नर वह होता है जो अपनी बाधा के बावजूद फिट हो। वह बाधा एक ऐसे बिल्ले के रूप में काम करती है जो उत्कृष्टता की घोषणा करती है। केवल एक आश्वस्त जीव ही उस बाधा को अपने आड़े न आने देने की सामर्थ्य रखता है।

कोई भी बाधा दिखावटी नहीं हो सकती। यही बात उसे संकेत के रूप में सच्ची और विश्वसनीय बनाती है। ऐसा इसलिए क्योंकि आप बाधा होने का झाँसा नहीं दे सकते। अपनी बाधा को इतराकर दिखाने के लिए प्राणी को निवेश करना पड़ता है। यदि कोई जीव इतना प्रयास खर्च करने की सामर्थ्य नहीं रखता तो वह धोखा भी नहीं दे सकता। प्रणय निवेदन करते मोर का ध्यान खींच लेने वाली लेकिन वज़नदार पूँछ, घबराए हुए हिरण की दर्शनीय परन्तु ध्यान आकर्षक छलाँगें, भोले-भाले कौवे द्वारा कोयल के शिशुओं का पोषण करना - सभी को बाधा के सिद्धान्त के दायरे में स्पष्ट किया जा सकता है। आइए हम इनमें से दो परिस्थितियों को और बारीकी से देखें।

बाधा के उदाहरण

हमें सामान्यतः ऐसा प्रतीत होता है कि शिकारी और शिकार के हित, परस्पर विरोधी होते हैं। आखिरकार,

ज़हावी दम्पति ने मादा कौवे द्वारा कोयल के अण्डों को सेने जैसे व्यवहार को भी *बाधा के सिद्धान्त* द्वारा समझाने की कोशिश की है।

स्टॉटिंग: भेड़िया या इस जैसे किसी शिकारी जानवर की मौजूदगी का अहसास होने के बाद हिरण हवा में उछल-कूदकर यह संकेत देने की कोशिश करता है कि वह शारीरिक रूप से भागने में सक्षम है और अपने पास मौजूद खतरे को भाँप चुका है। अकसर, यह देखा गया है कि इस संकेत को समझकर शिकारी जानवर किसी और हिरण के शिकार के लिए चल देते हैं।

एक भोजन की तलाश कर रहा होता है जबकि दूसरा खुद को किसी का भोजन बनने से बचाना चाहता है। लेकिन, यह दोनों के हित में है कि ऐसे संघर्ष से बचा जाए जिसका नतीजा शिकार का हाथ से निकल जाना हो। यदि पहले से ही इस तरह के किसी नतीजे का अनुमान हो, तो शिकारी अपने समय और प्रयास को बचाएगा तथा किसी और जगह पर कोई कमज़ोर या आसान शिकार ढूँढ़ेगा, जबकि सम्भावित शिकार भागने में खर्च होने वाली ऊर्जा को बचा सकेगा।

ये लेखक दम्पति 'स्टॉटिंग' के आचरण को यहाँ एक उदाहरण के रूप में इस्तेमाल करते हैं। स्टॉटिंग, किसी भेड़िए या फिर अन्य शिकारी जानवर को देख लेने पर हिरणों द्वारा भागने से पहले हवा में लगाई जाने वाली कूदें होती हैं। लेखकगण कहते हैं कि यह उस हिरण के लिए अतार्किक आचरण है जो बचकर भाग निकलने

की फिराक में हो, उसे तो बस भागना चाहिए; न कि इस तरह की ऊँची छलाँगे लगाकर 'समय गँवाना' चाहिए। उनका कहना है कि ऐसा हिरण जो इस तरह की खतरनाक हरकत करता है, वह पक्के तौर पर अपने सम्भावित शिकारी को अपनी शारीरिक मुस्तैदी का संकेत दे रहा होता है।

ऐसा करने से वह शिकारी जानवर को यह संकेत देता है कि वह उसे देख चुका है (अतः शिकारी के पास अचानक हमले वाला फायदा नहीं रह गया है), और वह इतना सक्षम है कि लम्बी दौड़ में वह शिकारी को मात दे देगा। कई ज़मीनी अवलोकनों के बाद, यह पाया गया कि अकसर ही कूदते-फाँदते हिरणों के सामने आए शिकारी उन्हें छोड़ किसी अन्य शिकार की तलाश करने लगते हैं। लेखकद्वय इसका उदाहरण एक ईमानदार संकेत के रूप में देते हैं जो कि शिकारी व शिकार के मध्य संवाद के साधन के रूप में उभरा है। इसमें हिरण की काफी ऊर्जा व प्रयास लगता है अतः यह बनावटी नहीं हो सकता। किसी कमज़ोर हिरण के लिए ऐसी कूदें लगाने का प्रयास करना आत्मघाती साबित होगा; इससे उसकी कमज़ोरी ज़्यादा जल्दी प्रकट हो जाएगी और वह आसान शिकार बन जाएगा।

प्रणय प्रदर्शन और बाधा का सिद्धान्त

मोर की ही तरह, अन्य प्रणय प्रदर्शन भी इन लेखकों द्वारा अकसर उदाहरण के रूप में उद्धृत हैं। सामान्यतः नरों की तुलना में मादाएँ अपनी सन्तानों के लिए ज़्यादा निवेश करती हैं। और वे वर्ष में कुछ निश्चित मौकों पर ही प्रजनन के लिए ग्रहणशील होती हैं, और एक बार गर्भधारण करने के बाद वे गर्भावस्था के दौरान, और उसके कुछ समय बाद तक, पुनः गर्भधारण नहीं कर सकतीं। अतः उन्हें प्रणय के लिए नर साथी बड़े ध्यान से चुनना पड़ता है। दूसरी तरफ, नर, मादाओं के ग्रहणशील होने के छोटे-से काल में कई मादाओं के साथ मेटिंग करते हैं। ऐसे में अपनी जींस को आगे बढ़ाने के ज़्यादा-से-ज़्यादा मौके खोजना इनका उद्देश्य होता है। अतः प्रणयकाल में प्रत्येक नर के लिए ज़रूरी होता है कि वह ज़्यादा-से-ज़्यादा मादाओं को रिझाए और उनके साथ प्रणय-सम्बन्ध बनाए। जैसा कि चर्चा की जा चुकी है, मोर अपनी पूँछ को खड़ा कर लेता है - जो अपने आपमें एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके लिए सामर्थ्य की ज़रूरत प्रतीत होती है - और उसे वह समय-समय पर ज़ोर-ज़ोर से हिलाता भी रहता है। ऐसा समझ में आता है कि यह करके वह मादा को अपनी शारीरिक योग्यता दिखा रहा होता है। साथ ही उसकी पूँछ के पंख वर्ष के ऐसे समय में विकसित होते हैं जब भोजन की कमी होती है। अतः ऐसा नर जिसकी पूँछ पर खूबसूरत पंख होते हैं, तनावभरी परिस्थितियों में सफलतापूर्वक खाना तलाशने और प्राप्त करने की

बर्ड ऑफ पैराडाइज़ का नृत्यः नर बर्ड ऑफ पैराडाइज़ प्रणय काल के दौरान उलटा लटककर, पंख फैलाकर परों को फड़फड़ाता है। उसका नृत्य मादा को यह संकेत देता है कि वह मुश्किल हालात में भी दाने-पानी का जुगाड़ करने में सक्षम है।

अपनी क्षमता का सबूत दे रहा होता है, और इस तरह वह साथी के रूप में अपनी वांछनीयता को भी जता रहा होता है।

प्रणयकाल में, रंग-बिरंगा दर्शनीय बर्ड ऑफ पैराडाइज़ पेड़ पर उलटा लटक कर अपने पंख फैला लेता है और उन्हें फड़फड़ाता है। वह अतिविशिष्ट तरीके से नाच रहा होता है। प्रणयकाल के दौरान श्वेत पेलिकन पक्षी अपनी चोंच के आधार स्थान पर (आँखों के एकदम आगे) कई उभार विकसित कर लेता है। उभार एक प्रकार की अड़चन है। इसके कारण पेलिकन के लिए देखना कठिन हो जाता है और उसकी मछली पकड़ने की क्षमता बाधित होती है। इस प्रदर्शन से एक सफल मत्स्य-शिकारी अपनी सम्भावित प्रणय-संगिनियों को यह साबित करता है कि वह इस अड़चन के बाद भी आसानी-से मछलियाँ पकड़ सकता है। प्रणय-प्रदर्शनों के ये अवलोकन कई सालों से किए जा रहे हैं और प्रकृतिवादियों के लिए ये कोई नई बात नहीं हैं। लेकिन, एक कोशिकीय फफूंद, यीस्ट (खमीर) के बारे में समझाते वक्त लेखकद्वय एक नया अवलोकन और नई परिकल्पना सामने रखते हैं।

यीस्ट की कोशिकाएँ अलैंगिक (बडिंग/मुकुलन या विखण्डन द्वारा) और लैंगिक, दोनों ढंग से प्रजनन करती हैं। मेटिंग के आधार पर यीस्ट

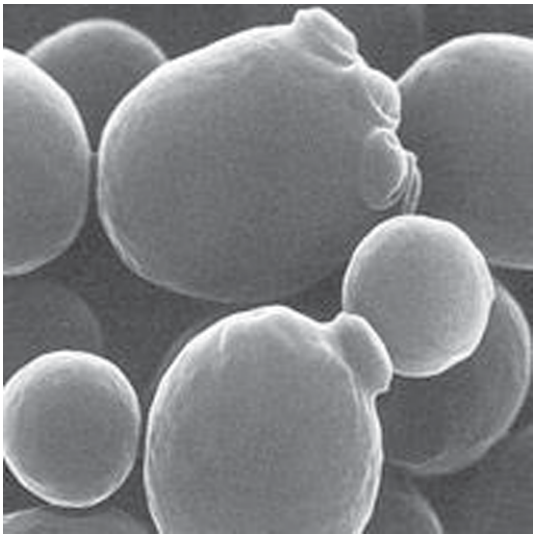

यीस्ट कोशिकाएँ लैंगिक और अलैंगिक, दोनों तरह से प्रजनन कर सकती हैं। *बाधा के सिद्धान्त* के पैरोकार ज़हावी दम्पति का मानना है कि यीस्ट कोशिकाएँ पेप्टाइड अणुओं को सजाकर प्रणय संकेत देती हैं।

के दो भिन्न प्रकार होते हैं, जिन्हें 'a' और 'α' कहा जाता है। दोनों ही, कोशिका की सतह पर पाए जाने वाले पेप्टाइड अणु को प्रणय 'संकेत', जैसा कि लेखकों ने उसे कहा है, के रूप में उपयोग करते हैं। ये पेप्टाइड बिरले ही खाली होते हैं, और आम तौर पर इनके साथ ओलिगो-सैकेराइड मोइटी (क्रियात्मक समूह), और कभी-कभार लिपिड (वसा) भी जुड़े होते हैं। लेखकों का मानना है कि यीस्ट कोशिकाएँ पेप्टाइड अणु को 'सजाकर', जो कि उनका प्रणय संकेत है, प्रणय के साथी के रूप में अपनी वांछनीयता की घोषणा करते हैं। यह बदलाव करने के लिए, उन्हें कीमती रसायनिक संसाधन (जैसे लिपिड और शर्करा) इस्तेमाल करने की ज़रूरत पड़ती है। यह परिवर्तित संकेत एक बाधा की तरह काम करता है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इस परिकल्पना का परीक्षण किया जा सकता है, और उससे वाकई में यह समझ में आता है कि एक 'अलंकृत' पेप्टाइड को 'अनअलंकृत' पेप्टाइड की तुलना में तरजीह दी जाती है, जिससे यह मालूम पड़ता है कि *बाधा का सिद्धान्त* एक कोशिकीय स्तर पर भी संकेतों को समझने का एक मौलिक ढंग है।

डार्विन के अपने शब्दों में

"जैसा कि ये उदाहरण दिखाते हैं, कई यौन प्रदर्शनों में काफी फिज़ूलखर्ची

दिखाई देती है," और *बाधा का सिद्धान्त* यह समझाने की कोशिश करता है कि ऐसा क्यों है। पर यह प्रकृति विज्ञानियों के बीच कई सालों से चर्चा का विषय रहा है। वास्तव में, खुद डार्विन ने भी यह लिखते वक्त *बाधा के सिद्धान्त* से मिलता-जुलता ही कुछ सुझाया था, "मादाएँ, ज़्यादा अलंकृत नरों, सर्वश्रेष्ठ गायकों, सबसे ज़्यादा विनोदी हरकतें करने वाले नरों को देखकर उत्तेजित होती हैं, या उन्हें अपना संगी बनाना पसन्द करती हैं; पर, साथ ही इसकी भी काफी सम्भावना है, जैसा कि वास्तव में कुछ मामलों में देखा गया है कि वे ज़्यादा जोशीले और जीवन्त नरों को पसन्द करें" (*द डिसेंट ऑफ मैन एंड सिलेक्शन इन रिलेशन टु सेक्स*)।

भले ही *बाधा का सिद्धान्त* रोमांचक और युक्तिसंगत हो, पर ऐसा प्रतीत होता है कि अप्रमाणित आँकड़ों का इस्तेमाल करके मानवीय समानताएँ दिखाते वक्त लेखकद्वय अपने जोश में ज़्यादा ही बह गए। बाधा के सिद्धान्त के सक्रिय रूप से लागू होने के उदाहरणों के रूप में गालों और होठों के रंग से लेकर गुफाचित्रों तक की चर्चा की गई है। यहाँ तक कि दाढ़ियों को भी नहीं छोड़ा गया। कई मामलों में तो ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने पहले ऐसी कोई बात चुन ली जिसे संकेत के रूप में स्वीकार किया जा सकता हो, और फिर बाद में इसके इर्द-गिर्द अपनी एक व्याख्या गढ़ ली। पर यह कहने के बावजूद, यह सिद्धान्त न सिर्फ

इज़राइली वैज्ञानिक दम्पति ऐमोट्ज़ और ऐविशाग ज़हावी द्वारा 1970 के दशक में *बाधा का सिद्धान्त* प्रस्तावित किया गया था। अपने इस विचार के लिए इन दोनों ने जीव-जन्तुओं के व्यवहार का गहन अध्ययन किया। ऐमोट्ज़ ऐसे ही एक अध्ययन में मशगूल हैं।

मौलिक और अनोखा है, बल्कि सबसे महत्वपूर्ण बात है कि यह प्रयोगों के सक्षम ढाँचों तथा परिकल्पनाओं के सत्यापन के लिए भरपूर अवसर उपलब्ध कराता है।

जब 1975 में सबसे पहली बार *बाधा का सिद्धान्त* प्रस्तावित किया गया था, तो इसे काफी ज़्यादा सन्देहों का सामना करना पड़ा था। उस समय गणतीय प्रतिरूप (mathematical models) भी ऐसा प्रकट करते दिखे कि यह सिद्धान्त काम का नहीं है। ऐसा लगने लगा कि यह सिद्धान्त भी विज्ञान के इतिहास के उन सिद्धान्तों की श्रेणी में शुमार हो जाएगा जो आकर्षक तो थे पर गलत थे।

लेकिन, 1990 के बाद वैज्ञानिकों की राय बदल गई। यह परिवर्तन अवलोकनों से मिले अधिकाधिक समर्थन और ऐलेन ग्रैफेन द्वारा किए गए परिष्कृत गणितीय प्रतिरूपण की वजह से सम्भव हो पाया, जिन्होंने यह दिखाया कि यह एक व्यवहारिक सिद्धान्त है। अब इसे एक अनूठे सिद्धान्त के रूप में स्वीकार किया जाने लगा है, जिसका प्राणियों की आचरण-योजनाओं को समझने में व्यापक उपयोग किया जा सकता है। अपने सिद्धान्त को पन्द्रह साल की देरी से मिली स्वीकृति पर टिप्पणी करते हुए, ज़हावी कहते हैं, "जीव-विज्ञानी मौखिक मॉडल के रूप में प्रस्तुत किए गए तर्क से अप्रभावित रहे, और उन्होंने बाधा के सिद्धान्त को तभी स्वीकार किया जब उसे एक जटिल गणितीय प्रतिरूप में व्यक्त किया जा सका, जो कि मैं और सम्भवतः कई अन्य इथोलॉजिस्ट (प्राणि व्यवहार का उनके रहवास में अध्ययन करने वाले जीवविज्ञानी) समझ नहीं पाते।" हो सकता है कि उभरते हुए जीवविज्ञानी इस खेदपूर्ण वक्तव्य का समर्थन करें।

लास्या संहिता: वर्तमान में डिपार्टमेंट ऑफ माइक्रोबायोलॉजी एंड सेल बायोलॉजी, इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस, बैंगलोर से पीएच.डी. कर रही हैं। उनकी शोध रुचियों में वैकासिक जीवविज्ञान शामिल है, और वे अभी प्रोटीन संश्लेषण के सन्दर्भ में उठने वाले वैकासिक प्रश्नों पर काम कर रही हैं।

अँग्रेज़ी से अनुवादः भरत त्रिपाठी: पत्रकारिता का अध्ययन। स्वतंत्र लेखन और द्विभाषिक अनुवाद करते हैं। होशंगाबाद में निवास।

मूल लेख 'रेज़ोनेंस' पत्रिका के अंक, मई 2010, खण्ड 15 में प्रकाशित हुआ था।